देने व पाने का रूपान्तरणकारी चक्र

सिद्धयोग अभ्यास 'दक्षिणा' पर एक व्याख्या

मार्क मेक्लॉलिन द्वारा लिखित

सिद्धयोग पथ पर गुरुपूर्णिमा वह समय है जब हम श्री गुरु का सम्मान एवं उनकी पूजा करते हैं, उनके द्वारा प्रदान किए गए विपुल आशीर्वादों पर मनन करते हैं और श्री गुरु की कृपा के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं जो हमारे जीवन में अनेकानेक रूपों में प्रकट होती है। दक्षिणा अर्पण करना, गुरुपूर्णिमा माह के दौरान होने वाले उत्सवों का अभिन्न अंग है।

दक्षिणा, श्री गुरु को आर्थिक भेंट अर्पित करने का एक अभ्यास है और यह सिद्धयोग पथ का एक प्रमुख अभ्यास है। जब विद्यार्थी नियमित रूप से दक्षिणा अर्पित करते हैं, तब वे देने व पाने के एक शक्तिशाली चक्र में भाग लेते हैं।

सृष्टि में, हमें देने व पाने के चक्र के कई उदाहरण मिलते हैं। नदियों, झरनों व समुद्रों का जल भाप बनकर उड़ जाता है और बादलों में परिवर्तित हो जाता है और बादल उसी जल को जीवनदायिनी वर्षा के रूप में वापस दे देते हैं। पौधे वायु से कार्बन-डाइऑक्साइड लेते हैं और ऑक्सीजन वापस देते हैं; प्राणी उस ऑक्सीजन को श्वास द्वारा अन्दर लेते हैं और कार्बन-डाइऑक्साइड बाहर छोड़ते हैं और इस प्रकार इस ग्रह पर जीवन बना रहता है। एक किसान भूमि पर खेती करता है और उसे और अधिक उपजाऊ बनाने के लिए प्रयत्न करता है और धरती बदले में भोजन के लिए फसलें उपजाती है; और वह भोजन किसान तथा आस-पास रहने वाले लोगों का पोषण करता है। जहाँ भी देखें, हमें देने व पाने का चक्र दिखाई देता है। और हम पाते हैं कि किस प्रकार यह चक्र जीवन के क्रियाकलाप को पोषित करते हुए चलता ही रहता है।

प्राचीन समय में, वेदकालीन ऋषिगण यज्ञों को, देने व पाने के चक्र के साथ एकलय रखने का यत्न करते थे। यज्ञ में पुरोहित, पवित्र अग्नि को आहुतियाँ अर्पित करते हैं — वह अग्नि जो सृष्टि में सर्वत्र विद्यमान

चिति के प्रकाश का प्रतीक है। चूँकि यज्ञ एक पूजा-विधि है, इसलिए पुरोहित केवल सर्वश्रेष्ठ सामग्री ही अर्पित करते हैं — दूध, घी, शहद, अनाज, तिल, चावल तथा अन्य सामग्रियाँ जो प्रकृति की प्रचुरता का प्रतीक हैं। यज्ञकर्ता समझते हैं कि उनके अनुष्ठान से जो भी फल मिलेगा, उसका चुनाव वे नहीं कर सकते — उसके निर्धारण का अधिकार भगवान का है। उनका धर्म, उनका कर्तव्य तो है देना, उदारतापूर्वक आहुतियाँ अर्पित करना।

योग के अभ्यासों का प्रतिपादन करने वाले ऋषियों ने, देने व पाने के उस सिद्धान्त से प्रेरणा ली थी जो यज्ञ का आधार है। यौगिक अभ्यास अनेक प्रकार से वैदिक अनुष्ठानों की आहुतियों के समान हैं। वे आध्यात्मिक विद्यार्थी का मार्गदर्शन करते हैं कि वह स्वयं को, अर्थात् अपने विचारों, वाणी एवं कर्मों को भगवान को अर्पित कर दे। श्रीमद्भगवद्गीता तथा विज्ञानभैरव जैसे शास्त्रों द्वारा बताए गए ध्यान के अभ्यासों में, व्यक्ति यह कल्पना करता है कि आत्मा का प्रकाश अग्नि है जिसमें वह मानसिक क्रियाओं तथा इन्द्रियों के विषयों को अर्पित करता है, ताकि ये सब चिति में विलीन हो जाएँ। एक और उदाहरण है मन्त्रों का संकीर्तन या पाठ करना जिसमें व्यक्ति अपनी पूरी आवाज़ में भगवान की स्तुति या उनका आवाहन करता है; और सेवा करते समय वह अपने कृत्यों को निःस्वार्थ रूप से श्री गुरु को अर्पित करता है।

इसी तरह, दक्षिणा के अभ्यास की उत्पत्ति, स्वयं को अर्पित कर देने की पवित्र परम्परा से हुई। दक्षिणा, पूजा का एक रूप है, अपने कार्यों के फल को भगवान के प्रकाश को अर्पित करने का एक तरीक़ा है। संस्कृत शब्द, दक्षिणा का एक पारम्परिक अर्थ है, "वह भेंट जो विद्यार्थी शिक्षक को अर्पित करता है।" देने के इस कृत्य द्वारा विद्यार्थी, शिक्षक से प्राप्त ज्ञान के महत्त्व की अभिस्वीकृति करता है।

सभी आध्यात्मिक अभ्यासों की तरह, दक्षिणा से गहनतम प्राप्ति तब होती है, जब इसका अभ्यास निःस्वार्थ भाव से, समर्पण एवं सही समझ के साथ किया जाता है। जब एक शिष्य नियमित रूप से दक्षिणा का अभ्यास करता है तो वह उस आन्तरिक रूपान्तरण को पोषित करता है जिसे श्री गुरु की कृपा ने आरम्भ किया है — जब तक कि अन्ततः, शिष्य उस स्थिति में अवस्थित नहीं हो जाता, जिसके मूर्तरूप स्वयं श्री गुरु हैं। श्री गुरु ने पूर्णता प्राप्त की है— परम आत्मा की परिपूर्णता तथा समग्रता को प्राप्त कर लिया है; पूर्ण चन्द्र इसका बहुत ही सुन्दर प्रतीक है। दक्षिणा अर्पित करते समय शिष्य की यह समझ होती है कि अपनी आत्मा की परिपूर्णता तथा समग्रता का अभिज्ञान — जो कि साधना का फल है — गुरुकृपा की ज्ञानप्रद उदारता से ही सम्भव है।

छान्दोग्योपनिषद् की एक कहानी दक्षिणा की शक्ति का बहुत सुन्दरता से वर्णन करती है।

एक दिन सत्यकाम जाबाल, एक युवा साधक जो एक दीन परिवार से था, गौतम ऋषि के पास गया और उनसे प्रार्थना की कि वे उसे अपने शिष्य के रूप में स्वीकार कर लें। सत्यकाम ब्रह्मज्ञान पाना चाहता था। श्री गुरु ने सत्यकाम को स्वीकार कर लिया। परन्तु, ब्रह्मज्ञान प्रदान करने से पूर्व उन्होंने सत्यकाम को चार सौ क्षीण व दुर्बल गायें दीं और उसे निर्देश दिया कि वह उनकी अच्छी तरह देखभाल करे।

गायों को चराने के लिए जंगल की ओर ले जाते हुए सत्यकाम ने प्रतिज्ञा ली, "मैं अपने गुरु के पास तब तक वापस नहीं जाऊँगा जब तक इन गायों की संख्या एक हज़ार नहीं हो जाती।" सत्यकाम के लिए ये अतिरिक्त गायें उस सम्पत्ति का प्रतीक थीं जो उसके प्रयत्नों द्वारा प्राप्त हो सकती थी। साथ ही उसके लिए यह एक अवसर था कि वह परिश्रम द्वारा अपने गुरु को दक्षिणा अर्पित कर सके।

वर्षों तक सत्यकाम प्रेम से गायों की देखभाल करते हुए जंगल में रहा। चूँकि वह निष्ठापूर्वक उनकी देखभाल करता था, अतः गायें हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ हो गइ-और उनकी संख्या बढ़ती गई। अन्ततः उनकी संख्या एक हज़ार तक पहुँच गई। एक दिन उस झुण्ड के बैल ने सत्यकाम को सम्बोधित करते हुए कहा, "हे सत्यकाम, अब हम एक हज़ार हो गए हैं। हमें गुरु के घर ले चलो।" वह बैल ब्रह्म के एक पक्ष पर व्याख्या करने लगा जो सत्यकाम के लिए आश्चर्यचकित कर देने वाली बात थी।

जब सत्यकाम अपने गुरु के घर वापस जाने की यात्रा कर रहा था, तब प्रकृति के तत्त्वों एवं जीव-जन्तुओं ने उसे हर दिन ब्रह्म के एक अलग पक्ष के बारे में बताया। पहले एक छोटी-सी अग्नि ने उसे ब्रह्म के बारे समझाया — फिर एक हंस ने और फिर एक जलपक्षी ने। रास्ते भर सत्यकाम को परब्रह्म के तेज व असीमितता के विषय में गहन शिक्षाएँ प्राप्त होती रहीं और वह विस्मित होता रहा।

जब सत्यकाम एक हज़ार गायों को लेकर अपने गुरु के घर वापस पहुँचा तो वह ज्ञान- प्राप्ति के तेज से दमक रहा था। गौतम ऋषि ने प्रसन्न हो कर कहा, "तुम ब्रह्मज्ञानी की भाँति तेजस्वी दिख रहे हो" और पूछा, "तुम्हें ये शिक्षाएँ किसने दीं?"

सत्यकाम ने उत्तर दिया, "ये शिक्षाएँ मुझे मनुष्यों को छोड़, अन्य जीव-जन्तुओं ने दी हैं। परन्तु, मेरे परम पूज्य गुरुदेव, मुझमें अब भी पूर्ण ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने की ललक है, अतः कृपया मुझे उपदेश दें।" फिर गौतम ऋषि ने सत्यकाम को शेष शिक्षाएँ देकर उसे पूर्ण ब्रह्मज्ञान प्रदान किया।

इस कथा में 'दक्षिणा' के विषय में कई महत्त्वपूर्ण शिक्षाएँ हैं। सत्यकाम जाबाल के अन्दर भगवान को जानने की तीव्र ललक थी, इसलिए उसने एक ऐसे गुरु की खोज की जो उसे वह ज्ञान प्रदान कर सकें। दुर्बल गायों को जंगल में चराने के लिए ले जाते समय सत्यकाम ने यह संकल्प लिया और प्रतिज्ञा की कि वह गुरुदक्षिणा के साथ ही लौटेगा। और चूँकि सत्यकाम दक्षिणा अर्पण करने के अपने संकल्प के प्रति निष्ठावान रहा, वह गुरुकृपा और ज्ञान का अनुभव कर सका जो सब ओर से उसके समक्ष प्रकट हो रहा था। अग्नि, पशु, पक्षी और उन अनमोल गायों ने स्वयं ही सत्यकाम को उदारतापूर्वक योग की अन्तर्दृष्टियाँ प्रदान कीं और अन्तर-ज्ञान की ज्योत प्रज्वलित की। देने व पाने के चक्र में, 'देने' के महत्त्व का वर्णन इस कथा में बहुत अच्छी तरह से किया गया है जोकि गुरु के साथ शिष्य के सम्बन्ध का केन्द्र-बिन्दु होता है।

दक्षिणा अर्पित करते समय, देने व पाने के इस चक्र में भाग लेते समय शिष्य के लिए यह आवश्यक है कि वह 'देने' पर एकाग्र रहे। यज्ञ में अर्पित की जाने वाली आहुतियों के समान ही, साधना में स्वयं को अर्पित कर देने का कृत्य शिष्य को उसकी सीमित धारणाओं से मुक्त कर देता है और उसे अपने सच्चे स्वरूप में पुनः प्रतिष्ठित कर देता है। जैसा कि छान्दोग्योपनिषद् की कथा में निहित है, शिष्य यह दृढ़ विश्वास रखता है कि साधना का फल सही समय आने पर अवश्य प्राप्त होगा।

इसीलिए, अन्य यौगिक अभ्यासों की तरह ही दक्षिणा अर्पित करने का अभ्यास भी बिना किसी अपेक्षा के किया जाना चाहिए। निःस्वार्थ भाव से श्री गुरु को भेंट अर्पित करने से शिष्य में उदारता एवं कृतज्ञता जैसे सद्गुण विकसित होते हैं और वह अपनी अन्तर्जात शुद्धता का अनुभव करने में और अधिक सक्षम बन जाता है। वे जो कृपा व सच्चा ज्ञान प्रदान करते हैं उनका सम्मान करने से शिष्य उस ज्ञान के साथ एक हो जाता है — आत्मा के आनन्द के साथ एक हो जाता है।

© २०१६ एस.वाय.डी.ए. फ़ाउण्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।